स्नातक प्रथम खण्ड(पत्र–प्रथम)

डॉ0 गौतम कुमार

अतिथि शिक्षक

राजनीति विज्ञान विभाग

आचार्य नरेन्द्र देव महाविद्यालय, शाहपुर पटोरी, समस्तीपुर

सामाजिक परिवर्तन का अर्थ, प्रकृति एवं सिद्वांत

(Social Change : Meaning, Nature & Theories of Social Change)

सामाजिक परिवर्तन के सिद्वांत (Theories of Social change)

समाज/देश में सामाजिक परिवर्तन होते रहते हैं। प्रत्येक सामाजिक परिवर्तन का कोई न कोई आधार तथा सिद्वांत होता है, जिसके आधार पर सामाजिक परिवर्तन हुआ हो। दो महान व्यक्तियों माओत्से तुंग और महात्मा गॉधी अपने विचार एवं सिद्वांत के आधार पर अपने देश की व्यवस्था में मूलभूत परिवर्तन लाने का काम किया है। परिवर्तन के लिए उदारवादी सिद्वांत का मार्ग अपनाना चाहिए। इस मार्ग से ही हम वांछित सामाजिक परिवर्तन की दिशा में आगे बढ़ सकते हैं। विभिन्न विद्वानों के द्वारा सामाजिक परिवर्तन के दो सिद्वांतों का प्रतिपादन किया गया है, जो इस प्रकार है :–

(1) उदारवादी सिद्वांत (2) मार्क्सवादी सिद्वांत

सामाजिक परिवर्तन का उदारवादी सिद्वांत – उदारवाद का मूल विचार यह है कि व्यक्ति और राज्य में व्यक्ति ही साध्य है। अर्थात् समस्त व्यवस्था का केन्द्र व्यक्ति ही है। राज्य, समाज और अन्य संस्थाऍ व्यक्ति के कल्याण के साधन ही है और समस्त व्यवस्था का निर्धारण व्यक्ति को केन्द्र विन्दु मानकर किया जाना चाहिए। सामाजिक परिवर्तन का उदारवादी सिंद्वांत, उदारवादी राजनीतिक चिन्तन पर आधारित है। सामाजिक परिवर्तन के उदारवादी सिद्वांत के प्रमुख सिद्वांत निम्न प्रकार हैं :–

(क) **इतिहास का खण्डन** – सामाजिक परिवर्तन के उदारवादी सिद्वांत का आस्था लोकतंत्र में है। इतिहासवाद के आधार पर सत्तावाद और सर्वाधिकारवाद का समर्थन उचित नहीं है। इस प्रसंग में प्लेटो, हीगल और मार्क्स ने अपने–अपने विचार एवं प्रमाण प्रस्तुत किये हैं। प्लेटो का

दर्शन सत्तावादी तथा सर्वाधिकारवादी है क्योंकि वह मिथकों के आधार पर **"संरक्षक वर्ग"** को शासन का सर्वश्रेष्ठ माना है।

(ख) **मनुष्य की विवेकशीलता में विश्वास** – सामाजिक परिवर्तन के उदारवारी सिद्वांत का मानना है कि मानव एक विवेकशील प्राणी है। वह अपने विवेक, सूझ–बूझ, ज्ञान, परिश्रम, संकल्प शक्ति के आधार पर सामाजिक सस्थाओं का निर्माण और पुर्ननिर्माण कर सकता है। अर्थात् उसमें सामाजिक परिवर्तन ला सकता है। इनका मानना है कि मानक नियंत्रण के बिना, मानव इतिहास आगे नहीं बढ़ सकता है। उदारवादी सिद्वांत स्वतंत्र चिन्तन को प्रधानता देता है तथा इसे अपनाने की बात करता है। व्यक्ति अपने सोच, विचार एवं निर्णय के आधार पर सामाजिक घटना चक्र को आगे बढ़ाने का प्रयत्न करे। यह उदारवाद भावना के स्थान पर विवेक को प्रधानता देता है। टामस पेन कहा है कि "मेरा मन ही मेरा चर्च है।" अतएव यह कहा जा सकता है कि व्यक्ति के विवेक और स्वतंत्र चिन्तन पर बल देना उदारवादी सिद्वांत का मुख्य सकारात्मक विन्दु है।

(ग) **क्रान्ति का विरोध और क्रमिक वृद्वि के सिद्वांत का प्रतिपादन** – उदारवादी सिद्वांत, व्यवस्था में परिवर्तन का पक्षधर है। उदारवाद के अनुसार परिवर्तन की प्रकृति क्रांति नहीं बल्कि क्रमिक वृद्वि एवं क्रमिक सुधार का मार्ग है। क्रांति की पद्वति का मार्ग अपनाने से हम इस सब दुष्प्रभाव से बच नहीं सकते हैं इसके लिए हमें क्रमिक सुधार की प्रकृति को अपनाना होगा ताकि किसी कार्य का दुष्प्रभाव आने पर हम अपनी गलती को सुधार की दिशा में आगे बढ़ सके। समाज में आम सहमति के निर्णय से यथा–छोटे–छोटे निर्णय, सीधे–सादे कार्यक्रम से परिवर्तन की जितनी सम्भावनाएँ बनती है उतनी दूरगामी और जटिल कार्यक्रमों के संबंध में नहीं बनती है। इन सब तथ्यों के आधार पर पॉपर तथा उदारवादी सिद्वांत के अन्य प्रतिपादक इस बात पर बल देते हैं कि सामाजिक परिवर्तन के सभी कार्यक्रम छोटे–छोटे चरणों में सम्पन्न किया जाना चाहिए। सामाजिक परिवर्तन के लिए शांति का मार्ग एवं वैधानिक मार्ग अपनाना चाहिए।

<u>सामाजिक परिवर्तन का मार्क्सवादी सिद्वांत</u> – सामाजिक परिवर्तन का मार्क्सवादी सिद्वांत काफी महत्वपूर्ण है। काल मार्क्स का मत था कि " दार्शनिकों ने केवल विश्व की व्याख्या की है प्रश्न तो इसमें परिवर्तन का है।" मार्क्स का मानना था कि भौतिक जगत में परिवर्तन लाना मनुष्य के हाथ में नहीं है। मार्क्सवादी सिद्वांत, मार्क्सवादी चितंन का केन्द्रीय विषय था। इस प्रकार मार्क्स के सामाजिक परिवर्तन के सिद्वांत को विभिन्न विचारों के आधार पर समझा जा सकता है, जो इस प्रकार है :–

1. द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद
2. ऐतिहासिक भौतिकवाद या इतिहास की आर्थिक व्याख्या

3. वर्ग सिद्वांत

1. **द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद** – मार्क्स के विचारों का मूल आधार द्वन्दात्मक भौतिकवाद है। द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद में दो शब्द हैं जिसमें प्रथम शब्द उस प्रक्रिया को स्पष्ट करता है, जिसके आधार पर सृष्टि का विकास हो रहा है और दूसरा शब्द तत्व सृष्टि के मूल तत्व को सूचित करता है। मार्क्स ने द्वन्द्वात्मक प्रणाली को हीगल से ग्रहण किया है। मार्क्स के द्वन्द्वात्मक पद्वति का आधार हीगल का द्वन्द्ववादी दर्शन है। जिसके तीन अंग क्रमशः वाद(Thesis), प्रतिवाद(Antithesis) और सामवाद(Synthesis) हैं। मार्क्स का मानना था कि वाद समाज की सामान्य स्थिति है, वाद से असंतुष्ट होकर प्रतिवाद और प्रतिवाद से पुनः प्रतिवाद उत्पन्न होता है और प्रतिवादों के संयोग से समवाद की उत्पत्ति होती है। इस प्रकार समाज में वाद, प्रतिवाद और समवाद की प्रक्रिया निरन्तर चलती रहती है। आर्थिक जीवन की अवस्थाओं में पूॅजीवादी और व्यक्तिगत सम्पत्ति वाद का विषय रहा है। जिसके कारण समाज दो वर्गो क्रमशः सम्पन्नशाली व सर्वहारा में बॅट जाता है। इसकी असंगति या दोष के कारण समाज में संघर्ष होता है तथा व्यक्तिगत सम्पत्ति की सामाजिक व्यवस्था के प्रतिपादन स्वरूप समाज के विकास की यह व्यवस्था आती है जिसे सर्वहारा वर्ग का अधिनाकतत्व की अवस्था कहा जाता है। इन दोनों अवस्थाओं के समवाद स्वरूप वह अवस्था होती है जिसे साम्यवादी अवस्था कहा जाता है तथा जिसमें व्यक्तिगत सम्पत्ति के स्थान पर सार्वजनिक स्वामित्व की व्यवस्था होती है।

2. **ऐतिहासिक भौतिकवाद या इतिहास की आर्थिक व्याख्या** – मार्क्स की विचारधारा में द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद की भॉति ही इतिहास की आर्थिक व्याख्या या आर्थिक नियतीवाद का सिन्द्वात भी महत्वपूर्ण है। वास्तव में द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के सिद्वांत को सामाजिक विकास के संबंध में प्रयुक्त करना ही इतिहास की आर्थिक व्याख्या है। मार्क्स के शब्दों में "सभी सामाजिक, राजनीतिक तथा बौद्विक संबंध, सभी धार्मिक तथा कानूनी पद्वतियों, सभी बौद्विक दृष्टिकोण, जो इतिहास के विकास–क्रम में जन्म लेते हैं वे सब जीवन की भौतिक अवस्थाओं से उत्पन्न होते हैं।" मानवीय इतिहास की मुख्यतः 6 अवस्थाएॅ हैं, जो इस प्रकार है :–

1. **आदिम साम्यवादी अवस्था** – आदिम काल में सामाजिक विकास के रास्ते काफी सरल थे। पत्थर के औजार, धनुष–वाण उत्पादन के मुख्य साधन थे। जिसके आधार पर शिकार करना, मछली मारना, तथा वनों से कन्द मूल एकत्रित करना इसका मूल व्यवसाय था। इस काल में लोग झुण्ड बनाकर आपस में रहते थे ताकि जंगल में सामूहिक रूप से जानवरों से रक्षा हो सके। इस काल में उत्पादन का समस्त साधन समाज की सामूहिक सम्पत्ति हुआ करता था। इस अवस्था में न तो निजी सम्पत्ति थी, न विवाह प्रथा और न परिवार। इस अवस्था में सभी समान थे तथा कोई किसी का

शोषण करने की स्थिति में नहीं था। इसलिए मार्क्स के द्वारा इसे "**साम्यवादी अवस्था**" कहा गया है।

2. **दास अवस्था** – धीरे–धीरे भौतिक परिस्थितियों में परिवर्तन होने लगा तथा लोग खेती और पशुपालन करने लगे और दस्तकारियों का उदय हुआ। इससे समाज में निजी सम्पत्ति के विचार का उदय तथा श्रम विभाजन प्रारम्भ हुआ। जिन लोगों के द्वारा भूमि पर अधिकार कर लिया गया, वे दूसरे व्यक्तियों को दास बनाकर बलपूर्वक कार्य कराने लगे। इस प्रकार आदिम समाज की स्वतंत्रता और समानता समाप्त हो गयी और समाज, स्वामी और दास दो अलग–अलग वर्गो में विभाजित हो गया तथा शोषण प्रारम्भ हो गया। आर्थिक क्षेत्र में इस व्यवस्था के अनुकूल ही राजनीतिक संगठन स्थापित हुए और साहित्य एवं दर्शन की रचना हुई।
3. **सामन्ती अवस्था** – जब उत्पादन के साधनों का विकास हुआ तो लोहे के समानों यथा– हल, करघे इत्यादि का चलन होने लगा और लोग कृषि, बागवानी आदि का कार्य करवाने लगे। इसके साथ ही कपड़ा उधोग का भी विकास हुआ। उत्पादन के इन साधनों का विकास तभी संभव था जब श्रमिक अपना कार्य रूचि, योग्यता और लगन से करे, अतः दास प्रथा के स्थान पर नवीन प्रकार के उत्पादन संबंध कायम हुए जो समान्ती व्यवस्था के नाम से जाना जाता है। सामन्ती व्यवस्था के अन्तर्गत सामन्त भूमि आदि उत्पादन के साधनों के स्वामी होते थे किन्तु भूमि पर खेती और दस्तकारियों का कार्य किसान और श्रमिक करते थे। इस अवस्था में भी शोषकों और शोषितों के बीच संघर्ष निरन्तर चलता रहा।
4. **पूँजीवादी अवस्था** – अठारहवीं सदी के उत्तरार्द्व में औधोगिक क्रान्ति हुई जिसमें उत्पादन के साधनों में आमूल परिवर्तन हुआ। इस अवस्था में पूँजीपति उत्पादन के साधनों का स्वामी होता है, लेकिन वस्तुओं के उत्पादन का कार्य श्रमिकों द्वारा किया जाता है। वस्तुओं का उत्पादन बड़े पैमाने पर किया जाता है और श्रमिक स्वतंत्र होते हैं। पूँजीपति न तो उसे बेच और खरीद सकते हैं तथा न ही उसका बंध कर सकते हैं। इस अवस्था में श्रमिकों के पास उत्पादन के साधन नहीं होते है और वे अपने भूख को मिटाने के लिए श्रम बेचने के लिए बाध्य होते हैं, जिसके कारण वे पूँजीपतियों के शोषण के शिकार होते हैं। इस शोषण के कारण बुर्जुआ शोषक वर्ग और सर्वहारा शोषित वर्ग के बीच संघर्ष की स्थिति उत्पन्न हो जाती है जो चरमोत्कर्ष पर पहुँचकर पूँजीवाद को समाप्त कर देती है। मार्क्स का मानना है कि "पूँजीवादी युग के उत्पादन संबंधों के अनुरूप ही इस युग की राजनीतिक व्यवस्था नौतिकता, कला, साहित्य और दर्शन होता है।"
5. **श्रमिक वर्ग के अधिनायकत्व की अवस्था** – मार्क्स का विचार है कि पूँजीवादी अवस्था में द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के अनुसार प्रतिक्रिया होगी और उसके परिणामस्वरूप

ऐतिहासिक विकास की पॉचवी अवस्था श्रमिक वर्ग के अधिनायकत्व की अवस्था आयेगी। इस युग में श्रमिक वर्ग उत्पादन के सब साधनों पर अधिकार करके पूॅजीवाद को अन्त कर देगा और श्रमिक वर्ग का अधिनायकत्व स्थापित हो जायेगा। इस अवस्था में अल्पमत वर्ग बहुमत वाले श्रमिक वर्ग का शोषण करता है, लेकिन इस अवस्था में बहुमत वर्ग के द्वारा अल्पमत पूॅजीवादी वर्ग के अवशेष तत्वों के विरूद्व राज्य शक्ति का प्रयोग कर उसे पूर्णतया समाप्त कर दिया जायेगा।

6. **साम्यवादी अवस्था –** पूॅजीवादी तत्वों के पूर्ण विनाश के पश्चात् मानवीय इतिहास की अंतिम अवस्था साम्यवादी अवस्था या राज्यविहीन और वर्गविहीन समाज की स्थापना होगी। मार्क्स के द्वारा साम्यवादी अवस्था के दो लक्षण बताये गये हैं। **प्रथमतः,** यह समाज राज्यविहीन और वर्गविहीन होगा। इसके अन्तर्गत केवल एक वर्ग श्रमिकों का वर्ग होगा। राज्य एक वर्गीय संस्था है अतः वर्गविहीन समाज में राज्य स्वतः ही लुप्त हो जायेगा। **द्वितीय,** इस समाज के अन्तर्गत वितरण का सिन्द्वात होगा, "प्रत्येक अपनी योग्यता के अनुसार कार्य करे और उसे आवश्यकता के अनुसार प्राप्ति हो।"

वर्ग संघर्ष (Class Struggle)

कालमार्क्स की विचारधारा में वर्ग संघर्ष को विशेष महत्व दिया गया है। मार्क्स ने अपने साम्यवादी घोषणापत्र में कहा है कि "अब तक के समस्त सामाजिक जीवन का इतिहास वर्ग संघर्ष का ही इतिहास है।" मार्क्स का मानना है कि समाज में टकराव अथवा द्वन्द्व वास्तव में दो विरोधी वर्गो के बीच चलता ही रहता है और वर्ग संघर्ष के कारण नये युग का सूत्रपात या सामाजिक परिवर्तन होता है। मार्क्स ने वर्ग संघर्ष के आधार पर होनवाले सामाजिक परिवर्तन को निम्न प्रकार से स्पष्ट किया है, जो इस प्रकार है :–

1. मार्क्स के अनुसार समाज में वर्ग क्रमशः उत्पादन तथा वितरण वर्ग से है जो अपने विरोधी हितों के कारण आपस में संघर्षरत रहते हैं। समाज में उत्पादन वर्ग के साधन के रूप में भूमि और पूॅजी पर आधारित व्यवस्था है जिसके अन्तर्गत जमीन्दार तथा पूॅजीपति वर्ग आते हैं। दूसरा समाज में वितरण वर्ग के साधन के रूप में कृषक या श्रमजीवी वर्ग हैं जो जमीन्दार अथवा पूॅजीपति के यहॉ परिश्रम कर अपना जीवन यापन करता है। पूॅजीपति वर्ग के द्वारा हमेशा श्रमिक वर्ग का शोषण किया जाता है। जिसके कारण मार्क्स का मानना था कि समाज में दो वर्ग क्रमशः शोषक वर्ग तथा शोषित वर्ग होता है। सदियों से यह देखा जा रहा है कि शोषक वर्ग के द्वारा हमेशा सर्वहारा वर्ग को शोषित किया जा रहा है।

2. समाज का प्रथम वर्ग अर्थात् शोषक वर्ग के द्वारा जब शोषित वर्ग पर अत्याचार की सीमा काफी अधिक हो जाती है अर्थात् असहनीय हो जाती है तो आपस में वर्ग संघर्ष की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। प्रथम वर्ग अर्थात् शोषक वर्ग के द्वारा विभिन्न प्रकार के उधोग–धंधे तथा अन्य व्यवसाय में पूॅजी लगाकर अधिक उत्पादन कम कीमत पर कराना चाहते हैं तथा अधिक से अधिक मुनाफा कमाना चाहते हैं वही दूसरी तरफ श्रमिक वर्ग अधिक से अधिक मजदूरी लेना चाहता है। श्रम के एवज में उचित मजदूरी नहीं मिलने पर उतारू हो जाता है जिसके कारण आपस में वर्ग संघर्ष की स्थिति उत्पन्न हो जाती है।
3. प्राचीन समाज में गृह उधोग की अवस्था से लेकर आधुनिक युग में फैक्टरी उधोग धंधें तक स्थापित हो गये हैं। फैक्टरी उधोग के कारण उत्पादन मे काफी वृद्वि हुई है। जिसके कारण व्यापार चक्र में व्यापारिक संकट का उदय होना स्वभाविक है। इसमें कम पूॅजीपति वाले लोग बड़े पूॅजीपति वाले लोगों के हाथों में चला आता है। परिणामस्वरूप छोटे पूॅजीपति लोग अधिक संख्या में पूॅजीपति वर्ग से बाहर आकर श्रमिक वर्ग में सम्मिलित हो जाते हैं और जनता का अधिकाधिक वर्ग पूॅजीपति का नौकर हो जाता है। व्यापारिक संकट होने के कारण पूॅजीपति वर्ग द्वारा वस्तुओं के मूल्य में कमी कर दी जाती है तथा मजदूरों/श्रमिकों के वेतन को कम कर दिया जाता है। जिसके कारण उसके अन्दर आक्रोश की स्थिति उत्पन्न हो जाती है और सभी आपस में एकत्रित एवं संगठित होकर वर्ग संघर्ष की स्थिति उत्पन्न कर देते हैं, जो सामाजिक परिवर्तन लाता है। मार्क्स का मानना है कि "मनुष्य के द्वारा मनुष्य का शोषण।"
4. पूॅजीवादी प्रणाली मजदूरों की संख्या बढ़ाती है। उसे सुसंगठित समूहों में एकत्रित कर, उसमें वर्ग चेतना को जागृत करती है। उनसे परस्पर सम्पर्क तथा सहयोग स्थापित कर विश्वव्यापी पैमाने पर यातायात तथा संचार का साधन प्रदान कर, क्रय शक्ति को कम करती है तथा उनका अधिकाधिक शोषण कर उन्हें संगठित प्रतिरोध करने या बदला लेने के लिए प्रोत्साहित करती है। जिससे मजदूरों को श्रमिक समाज के आवश्यकताओं के अनूकूल व्यवस्था स्थापित करने में स्वभाविक प्रयत्नों एवं प्रोत्साहन व बल मिलता है। जब श्रमिक वर्ग को सहने की सीमा समाप्त हो जाती है तो सर्वहारा वर्ग समस्त जजीरों को तोड़कर पूॅजीपतियों के विरोध में उतर जाता है तथा क्रांति आ जाती है, जो क्रांति का युग है। मार्क्स के अनुसार– "पुराने समाज का अन्त और नये समाज का जन्म" क्रांति के लिए आवश्यक है। इसका परिणाम पूॅजीपति वर्ग अथवा शोषक वर्ग का विनाश तथा सर्वहारा वर्ग का अधिनायकत्व की स्थापना।